प्रकाशक :—

शंकरदान शुभैराज नाहटा

५।६, आर्मेनियन स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

मुद्रक :—

भगवतीप्रसाद सिंह

न्यू राजस्थान प्रेस,

७३।ए, चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

श्री शंकरदानजी नाहटा

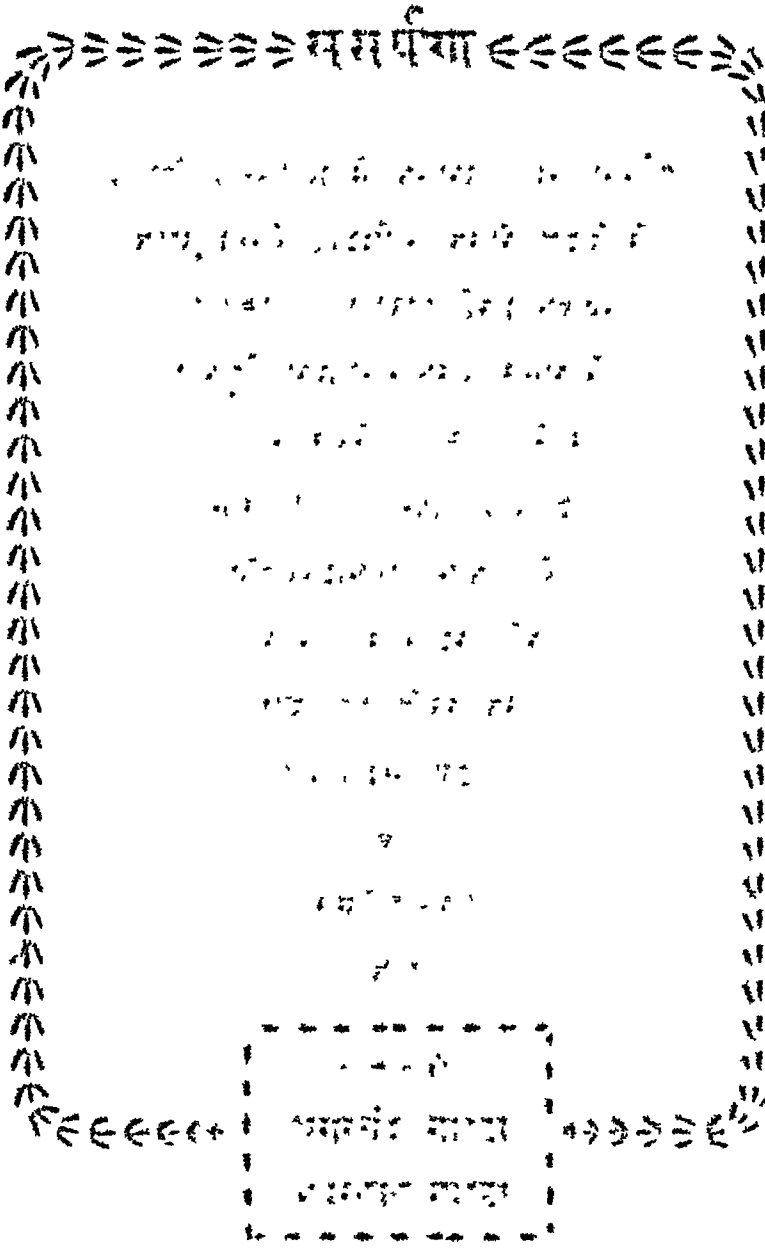

किञ्चित् वक्तव्य

[illegible]

न्याय से यह चरित्र स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित करते हुए हमे हर्ष होता है।

हमे यह देख कर दुःख होता है कि लोगों मे साहित्यिक रुचि का बडा ही अभाव है। खास कर राजस्थानी और जैन साहित्य के प्रति तो हिन्दी भाषा-भाषियों का रुख बड़ा ही विचारणीय है। यदि यह विचार किया जाय तो प्रमाणित होगा कि ये दोनों साहित्य भारतीय भाषाओं मे सस्कृत को छोड़ कर बाकी किसी भी भाषा के साहित्य-भडार से टक्कर ले सकते हैं। पर जैन समाज और राजस्थानी ससार अपनी इस साहित्य निधि को इस प्रकार भुलाये बैठा है मानो उससे उसका कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। यदि हम और भी संकुचित दृष्टि से विचार करें तो मालूम होगा कि, खरतरगच्छ मे दादाजी के हजारों भक्त है। साथ ही दादाजी के माननेवालों की तादाद अन्य गच्छों मे भी काफी है। भावुक श्रावक दादाजी के मदिर, पादुकाओ के स्थापनादि कार्यो मे दिल खोलकर खर्च करते हैं। मुक्तहस्त होकर उनकी सेवा-भावना का प्रसार होता है। पर सबसे अधिक दुःख तो इस बात का है कि, हम जिनकी अर्चना, सेवा और भक्ति-प्रदर्शन के लिये इतनी धनराशि व्यय करते हैं-उनकी कृतियों का, उनके अप्रतिम चरित्रो को जानने की ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। यह जाति की मरणोन्मुखता का ही द्योतक है। जागृत जातियाँ कभी भी ऐसा नहीं कर सकतीं। इससे कोई हमारा मतलब यह नहीं समझे कि हम पूजा-अर्चना

की अवहेलना करने की सिफारिश करते हैं पर हमारा नम्र निवेदन तो इतना ही है कि, लोग पूजा करें—दिन दूनी करें पर साथ ही इस बात का ज्ञान भी प्राप्त करने का प्रयास करें कि हमारे आराध्य देवों ने, हमारे पूज्यवर आचार्यों ने संसार को जो अतुलनीय ज्ञान दिया है वह क्या है—उन्होंने संसार के लिये क्या क्या रत्न छोड़े हैं। आशा है समाज हमारे इस निवेदन पर गंभीरता से विचार करेगा।

आज 'बंगला साहित्य' इतनी समृद्धि पर इसीलिये है कि बंगाली जाति ने उसको गौरव के साथ देखा है। अपने लेखकों, साहित्य-स्रष्टाओं को उसने उच्च आसन पर बैठाया है। उसने अपने साहित्य की भित्ति पर अपनी जाति का निर्माण किया है। पर हमारा समाज साहित्य से एक दम उदासीन है। वह पूजा करता है, पर यह नहीं जानता कि वह क्यों और किस प्रकार के महान् पुरुष के महान् आदर्श की अर्चना करता है। यह स्थिति दुःखद है और उज्ज्वल भविष्य की सूचना नहीं देती। हमने इसके पूर्व जैन साहित्य के १० ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। जिनमें दो तो दादाजी आचार्यों के जीवनचरित्र ही हैं और एक ऐतिहासिक जैन काव्यों का वृहत् संग्रह है। यदि जैन समाज इसको समुचित आदर के साथ स्वीकार कर लेता तो दिन पर दिन इस प्रकार के ग्रन्थों को शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करने का प्रयास किया जाता। भारतीय विद्वानों ने तो इन ग्रन्थों का बहुत ही आदर किया है। भारतीय पत्रों ने इनकी

बहुत ही प्रशंसा की है। पूज्य मुनिराज श्रीलब्धिमुनिजी ने युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि और दादा श्रीजिनकुशलसूरि इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर संस्कृत काव्यों का भी निर्माण किया है। पर हमें समाज की ओर से जैसा चाहिए उत्साह नहीं मिला। फिर भी 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' की सुप्रसिद्ध उक्ति के अनुसार हम अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर दृढ़ हैं और यह ग्यारहवां पुष्प समाज की सेवा में इस आशा के साथ रख रहे हैं कि कभी न कभी समाज में जागृति होगी ही।

श्रीमणिधारीजी का चरित्र बहुत ही संक्षिप्त मिलता है एवं उस समय का अन्य इतिहास भी प्रायः अंधकारमय है। अत. बहुत कुछ अन्वेषण करने पर भी हम इस चरित्र को मनोनुकूल नहीं बना सके। पुस्तक छोटी हो जाने के कारण उनके रचित 'व्यवस्था-कुलक' को भी सानुवाद इसमें प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही इसका महत्व इसलिये भी अधिक है कि आचार्यश्री की यही एकमात्र कृति हमें उपलब्ध है। इसकी एक पत्र की १ प्रति यति श्रीमुकुन्दचन्द्रजी के संग्रह में मिली थी व दूसरी जैसलमेर भंडार की प्रति से यति लक्ष्मीचन्द्रजी नकल कर के लाये थे। उससे हमने मिलान तो कर लिया था पर जैसलमेर भंडार की मूल ताड़पत्रीय प्राचीन प्रति के न मिल सकने के कारण पाठ-शुद्धि ठीक नहीं हो सकी है। पूज्य मुनिराज श्रीकवीन्द्रसागरजी ने जनसाधारण के लिये इसको अधिक उपयोगी बनाने के उद्देश्य से इसकी संस्कृत